

# नरेश मेहता का जन्म, शिक्षा, व्यक्तित्व और काव्य सर्जना का क्रमिक तिरोभाव

## सारांश

काशी के जीवन की स्मृतियों में खोये हुए नरेश जी ने एक प्रसंग राम कमल राय जी को बतलाया था – “ कि मुझे घर जाना था, पास में किराये के लिए पैसे नहीं थे। मांगना स्वभाव में नहीं था, एक रास्ता सूझा— कुंज गली में कुछ सुरुचि संपन्न व्यापारियों को कविता सुनाकर चालीस रुपये पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त किया और उसी से घर पहुंच गये।” उस स्थिति में उन्हें कट्टर वामपंथी हो जाना चाहिए था। मेहता जी के प्रयाग-वास के आरंभिक दो वर्ष अत्यन्त कठिनाई के थे। यहां का जो भी साहित्यिक वातावरण था। उसमें नरेश जी पूर्णतः एकाकी थे। संघर्षों से मेहता जी में कड़वाहट का भाव गहराता चला गया। उनकी इस भावना का रूपान्तर हम श्रीधर के चरित्र में देख सकते हैं।

“चैतन्य वाचामृत का अनुवाद प्रकाशक खो देता है। तो वह दुःखी होकर चुप हो जाते हैं।

एक समय था जब मेहता जी “ साहित्य और राजनीति को पर्यायवाची मानते थे। इससे यह ध्वनि निकलती है कि अपने लेखन के आरंभिक काल में वे राजनीति से किस सीमा तक प्रभावित थे। जिस समय मेहता जी हाईस्कूल में थे। उन दिनों सन् 1939-40 में विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर हिटलर का चकाचौंधकारी उदय हुआ। मेहता जी ने उसकी आत्मकथा “मीनकैम्फ” पढ़ी। देश के भीतर भी बहुत कुछ घटित हो रहा था। भगतसिंह की फांसी ने पूरे किशोर व युवा मन को आंदोलित कर दिया था। भगतसिंह की मृत्यु के पश्चात् नरेश मेहता ने खादी की टोपियां खरीदी तथा “बागी की गजलें” खरीद कर पढ़ी। 18 वर्ष की उम्र में मेहता जी अपने अध्ययन के क्रम में जब उज्जैन आये तो यहां उनके राजनीतिक गतिविधियों में पर्याप्त सक्रियता आयी। अध्ययन के साथ ही साथ वह स्वाधीनता संग्राम में भी भाग लेते रहे।

अपने दिल्ली के निवास काल में वह राजनीति से जुड़े रहे। वहां वह कुछ समय आई0ए0टी0यू0सी0 के कार्यकाल से और कुछ समय तक गांधी स्मारक से जुड़े रहे। 1959 में प्रयाग में बनने के उपरान्त उन्होंने राजनीति से एकदम संबंध विच्छेद कर दिया। वे स्वयं कहते हैं कि “जो मैंने साहित्य और राजनीति को पर्यायवाची बताया था, वह मेरी भूल थी।” उत्तर-कथा भाग दो में उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक की राजनीति का विवाद चित्रण किया है। मेहता जी बहुत दिनों तक गांधी जी को समझ नहीं सके थे। वे कहते हैं कि “ गांधी जी को पिछले तीस वर्षों में जितना आत्मासात मैंने किया है, उतना कम ही लोगों ने किया है। गांधी जी के अलावा कोई भी व्यक्ति चाहे वह जवाहर लाल नेहरू हो, सरदार पटेल हो या सुभाषचन्द्र बोस, भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई का पर्याय नहीं। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् नरेश मेहता हाईस्कूल का अध्ययन करने के लिए सिंहगढ़ गये तो वहां उनका परिचय प्रकृति एवं साहित्य दोनों से हुआ था। राजपुस्तकालय से अध्ययन हेतु पुस्तकें उपलब्ध हो जाती थीं। इन पुस्तकों से नरेश मेहता का मस्तिष्क विकसित होता रहा। हाईस्कूल से पूर्व ही उन्होंने “चन्द्रकान्ता,” राबिन्सन क्रूसों,” “युद्ध और शान्ति दो नगरों की कहानियां पढ़ी। विदेशी उपन्यासों में उन्होंने अधिकांश को पढ़ा है। हिंदी में प्रेमचन्द्र के “गोदान” से कहीं अधिक प्रभावकारी और महत्वपूर्ण रचना उन्हें “त्यागपत्र” प्रतीत होती है। कवि जीवन के आरंभ की। सन् 1938-39 के आस-पास “निशा-निमंत्रण” छपी तो उस स्टाईल पर पांच सौ कवितायें लिखीं। महादेवी की कविताओं से भाषा पर संचार मालूम हुआ। प्रवासी के आधार पर 100-150 कविताएं लिखीं— छठवीं-सातवीं में सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं ने भी पर्याप्त प्रभावित कर लिया था।

**मुख्य शब्द** : नरेश मेहता, शिक्षा, व्यक्तित्व, साहित्य

**प्रस्तावना**

नरेश मेहता का जन्म एक ऐसे ब्राह्मण परिवार में हुआ था, जो संस्कार से ही परम्परा में ही निष्णात थे। मेहता जी का जन्म मालवा के शाहजापुर कस्बे



**शशिबाला रावत**

प्रवक्ता,

हिन्दी विभाग,

हे0 न0 बहु0 गढ़वाल केन्द्रीय

वि0 विद्यालय, श्रीनगर,

गढ़वाल

में 15 फरवरी सन् 1922 को हुआ था। जैसे ही मेहता जी बाल्यावस्था पूरी ही कर चुके थे कि उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। उनके पिता पं० बिहारीलाल शुक्ल के तीन विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी बिना संतान के मुख देखे स्वर्गवासी हो गयी। द्वितीय पत्नी एक पुत्री जन्म देकर स्वर्गवासी हो गयी। तृतीय पत्नी ने एक पुत्र को जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त हो गये। नरेश मेहता के बाबा ने एक पुत्र को जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी। नरेश मेहता के बाबा एक पुरुषार्थी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके दो और पुत्र थे। पं० शंकर लाल मेहता पं० राम नारायण मेहता। उन्हीं के संरक्षण में मेहता जी का बाल्यकाल व्यतीत हुआ था। वे धार राज्य में हैडमास्टर थे और बाद में डिप्टी कलेक्टर हो गये थे। उन्होंने बालक नरेश को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार किया। नरेश जी 04 वर्ष की आयु में ही इनके पास चले गये थे। जब नरेश जी के पिता की मृत्यु हुई उस समय वे 23 वर्ष के थे। उनके बाबा एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उन्होंने बालक नरेश का हाथ देखकर बताया कि बच्चा घर पर टिकेगा नहीं। नरेश अपने चाचा के साथ छठवीं तक ही पढ़े। उसके बाद वे पढ़ने के लिए नरसिंह गढ़ चले गये थे। जहाँ उनकी बुआ का घर था। वहीं उन्होंने 7,8,9 और 10वीं कक्षाएँ उत्तीर्ण की थी।

नरेश की विमाता से एक बहिन थी। जिसका नाम शान्ति था। शान्ति का नरेश से बेहद लगाव था। शान्ति बाद-बाद में बीमार रहने लगी थी। उनकी मृत्यु सन् 1982 में हुई जब नरेश 10 वर्ष के थे। मृत्यु के 18-20 दिनों पूर्व का एक प्रसंग याद आया कि हम दोनों बैठे हुए थे, बालुकाओं के दल उड़ते रहे थे, दीदी ने पूछा कि ये कैसे लगते हैं? मैंने उत्तर दिया लगता है ये दोनों भौंड़े हैं। यही सम्भवतः मेरी पहली रचना है।

नरेश कहते हैं कि शान्ति मेरे लिए मां के तुल्य थी। शान्ति की मृत्यु प्रसव की पीड़ा से हुई थी। नरसिंहगढ़ के निवास काल में नरेश ने स्कूली पढ़ाई के अतिरिक्त बहुत कुछ पढ़ा। 39, 40 में जब विश्व के राजनीतिक क्षितिज पर हिटलर का चकाचौंध उदय हुआ था, तो नरेश जी ने उनकी आत्मकथा "मीन कैम्फ" पढ़ी। किशोर मानस पर यूरोप की चित्रात्मा का गहरा प्रभाव पड़ा। भगतसिंह की मृत्यु के पश्चात् नरेश ने खादी की टोपियाँ खरीदीं। "बागी की गजले" खरीद कर पढ़ी। 18 वर्ष की उम्र में नरेश जी अपने अध्ययन क्रम में उज्जैन आये। साहित्य और राजनीति दोनों क्षेत्र उनकी उत्कण्ठा और सक्रियता को आहूत कर रहे थे। नरेश जी एक बड़ी ही रोचक घटना बतलाते हैं। जब इण्टरमीडिएट पास होने पर पिता से भेंट हुई तो उन्होंने नरेश जी की प्रसन्नता का प्रतीक एक "ब्लैक-बर्ड कलम" इनाम दिया। कौन जानता था कि पिता ने वह लेखनी पुत्र को थमाई है। जो जीवन पर्यन्त अपनी नोक से संस्कृति की शाश्वतता की प्रतिष्ठा करती रहेगी। पिता ने जब में रखी कुल धनराशि 33-34 रुपये निकाल कर अर्पित करते हुए कहा— मेरे पास तो यही रकम है। इसे ले कर आप बनारस जायें या जापान, मुझे कोई आपत्ति नहीं है और सचमुच नरेश जी काशी के लिए चल पड़े।

बीच में प्रयाग पड़ता था। गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम। विश्वविद्यालय का वातावरण उन्हें अच्छा लगा। नरेश जी में ब्राह्मण संस्कार आड़े आये। फार्म के साथ 44 रुपये जमा करने थे। नरेश जी के पास केवल चार रुपये थे। उल्टे-पाँव स्टेशन लौट आये। गाड़ी में मुगलसराय में उन्हें एक अपरिचित सज्जन मिले जो नरेश जी को अपने साथ विश्वविद्यालय तक ले गये। वे बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय के डॉ० योगेन्द्र नाथ मिश्र थे। अब एक नया दौर शुरू हुआ। निश्चित राशि 20 रुपये महीने की थी। जो पिता के यहां से आती थी। नरेश जी बतलाते हैं कि पिता बड़े असंग अवश्य थे। उनसे जब भी मिलना हुआ तो एक निस्संग, आत्मीय, वत्सल भाव मुझे मिला। अतः नरेश जी की उन दिनों की स्मृतियाँ बेहद कड़ुवी हैं। कई बार नाम काटा गया, फिर लिखा गया। महीने-महीने एक वक्त खाने को मिलता था। इस कठिन तपस्या के दिनों में नरेश जी का मानस किस प्रकार का ज्ञान और संस्कार जुटाता रहा। उन दिनों नरेश जी ने वेद पढ़ना शुरू किया। स्नातक कक्षाओं में नरेश जी के विषय थे—राजनीतिशास्त्र, प्राचीन इतिहास और हिन्दी साहित्य, प्राचीन इतिहास तो उनकी संस्कृति का महत्वपूर्ण विषय था और हिन्दी साहित्य जिससे एम०ए० किया तथा शोध कार्य भी हिन्दी-साहित्य से प्रारम्भ किया था।

डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी के साथ सन् 46 में नरेश जी ने एम०ए० किया था तथा 47 में बनारस छोड़ दिया था। अपने जीवन का स्मृतियों में खोये हुए नरेश जी एक प्रसंग बतलाते हैं कि मुझे घर जाना था, मेरे पास किराये के लिए पैसे नहीं थे। मांगना स्वभाव में नहीं था, एक रास्ता सूझा। कुंज गली में कुछ सुरुचि सम्पन्न व्यापारियों को कविता सुनाकर 40 रुपये पारिश्रामिक के रूप में प्राप्त किये और उसी से घर पहुँच गया। सन् 48 से 53 तक नरेश जी ने रेडियो की नौकरी की। 50 से 52 का यह प्रयाग निवास उनके लिए बहुत प्रेरणादायक नहीं रहा। कम्युनिस्ट लेखक मुझे पूरी तौर पर कम्युनिष्ट न मानते हुए मुझे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। इसी मानसिक अवस्था में नरेश जी का परिचय गजानन माधव मुक्तिबोध से हुआ। नरेश जी ने बतलाया परन्तु वह "घृणा" एकदम गहरे-स्नेह में बदल गई। हम लोग साहित्य सृजन के विविध पहलुओं पर घंटों बातें करते रहते थे। लखनऊ में प्रगतिशील लेखकों से उनका संबंध बना रहा। यशपाल, अमृतलाल नागर आदि इनमें प्रमुख थे। अतः सबसे महत्वपूर्ण घटना उनके अन्तरंग जीवन में घटी।

उनका प्रेम एक महिला से हुआ। प्रेम विवाह की मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते रह गया। अन्ततः उस महिला ने आत्महत्या कर डाली। जब दिल्ली में उन्हें व्यवस्थित करने के क्रम में उनके विवाह की बात चली, तो उन्हें यह बिल्कुल भी नहीं लगा कि विवाह उसी लड़की से हो, जिससे प्रेम हो। उन्होंने एक महिमा जी उनकी पत्नी बनी। अतः बहुत बाद में उन्होंने 'धर्मयुग' में लिखा कि विवाह प्रेम के बाद नरक का सृजन करता है और विवाह के बाद स्वर्ग का। नरेश जी की प्रथम औपन्यासिक रचना "डूबते मस्तूल" बहुत कुछ दुर्घटना से प्रेरित होकर लिखी गयी थी। सन् 54 में "डूबते मस्तूल" को को आत्मामाराम

एण्ड सन्स ने छापा। सन् 59 में नरेश जी का प्रयाग में आना उनके जीवन में एक प्रकार से शुभारंभ था। महिमा जी का संबल सबसे बड़ा संबल था। उन्होंने एक प्रकार से अपने पति के कृत्रिम हाथों को बल और दृढ़ता प्रदान करने का दायित्व ही संभाल लिया था।

नरेश जी प्रयाग के साहित्यिक माहौल से अपने तालमेल की चर्चा करते हुए कहने लगे—कृति में एक बार डॉ० धर्मवीर भारती का एक लेख छपा था। जिसमें उनको आलोचना थी। वह भारती जी को याद थी। प्रयाग में दो महीने आने के बाद भारती जी की नियुक्ति “धर्मयुग” के संपादक पद पर हो गई। काफी हाऊस में उनसे भेंट हुई तो, मैंने उन्हें बधाई दी। भारती जी ने कहा कि मैं खूनी हाथों से हाथ नहीं मिलाता। मुझे अजीब-सा लगा। एक बार “परिमल” के सज्जन ने कहा कि देखो तुम इलाहाबाद में रहते कैसे हो? महिमा जी विवाह से पूर्व कानपुर में स्नातक कक्षाओं में समाजशास्त्र की प्राध्यापिका थी। बाद में महिमा जी को 60 रुपये महीने में सी०टी० ग्रेड में अध्यापिका की नौकरी मिली। पुत्र “बाबुल” के पाँच बाद दूसरी सन्तान “बुलबुल” का जन्म हुआ।

#### उद्देश्य

अब प्रयाग के “लोकभारती प्रकाशन” का ध्यान नरेश जी की ओर गया। वहीं से उनकी सारी रचनायें प्रकाशित हुईं। केवल “संशय की एक रात” का प्रकाशन श्री सुरेश ग्रोवर ने किया। सन् 62 से 72 तक “धूपकेतु एक श्रुति”, “नदी यशस्वी है”— जैसे उपन्यासकारों का लेखन नरेश जी के लिए उनकी पार्थिव आवश्यकताओं की पूर्ति का एक माध्यम रहा। वहीं उनके भीतर बैठे एक मन कथावाचक को चरितार्थ करने का उद्देश्य भी पूरा करता रहा है। परन्तु नरेश जी की सर्जना के गहरे आयाम उनकी कविता से ही निवृत्त होते हैं।

स्थाई महत्त्व की रचना देने में वही सफल होता है। जिसकी चेतना उदात्त हो तथा जिसमें विचारों की भव्यता और भावों की उत्कृष्टता का समावेश है। कहना न होगा कि नरेश मेहता इसी कोटि के कवि हैं। उनकी काव्य-चेतना मानव जीवन की उदात्तता, विराटता, भव्यता, सौंदर्यवादिता और चिरानंद को अपना लक्ष्य बनाकर निरंतर ऊर्ध्व पथ पर अग्रसर होती रही। ऊर्ध्व की आरोहणयात्रा में उसे वैष्णवी उत्सवता का अनुभव भी होता रहा है लेकिन इस प्रक्रिया में उसे कहां-कहां से होकर गुजरना पड़ा है इस की झलक ‘आविर्भाव’ शीर्षक कविता में देखी जा सकती है— ‘कविता की अभिव्यक्ति के लिए देखने के स्तर पर फूल, सुनने के स्तर पर वाद्य, स्पर्श के क्षितिज पर देह, स्वाद की पहुंच पर एक फल, घ्राण के व्यास पर एक सुगंध और स्मरणाकाश पर कुछ बीत पल, न जाने कहां-कहां भटकना पड़ता है और इस भटकन के उपरांत कविता का आविर्भाव होता है—अर्थात् काव्य के आविर्भाव के लिए कवि को मनुष्य की उन सारी इंद्रियों की उदात्ताओं से जाना पड़ता है जहां उसे एक पावनता और विराटता के दर्शन होते हैं।’ इसी जमीन पर खड़ा होकर नरेश मेहता यह मानते हैं कि —“काव्य मानवीय औदात्य की अभिव्यक्ति है। कैसा ही काव्य हो यह अनिवार्यतः मानव की महिमा का बोध कराता है।” (काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व, पृष्ठ सं०- 19)। “उनकी दृष्टि में

यही काव्य का प्रयोजन भी है—” काव्य का अंतिम प्रयोजन अनिवार्यतः मानवीय मुक्तता या उदात्तता की प्रतीति ही होगा चाहे वह रचना मंत्र, श्लोक, श्लोक, प्रार्थना, कीर्तन, बानी, गीत या महाकाव्य कुछ भी क्यों न हो। चाहे वह रचना आदर्शात्मक हो—रामायण की भांति या यथार्थवादी हो महाभारत की भांति, अगत्या उदात्त की पीठिका पर प्रस्थापित होती है।” (वही) कहना न होगा कि इसी उदात्तता को जगाए रखने का संकल्प लेकर नरेश मेहता काव्य-सृजन में प्रवृत्त हुए हैं तभी तो उन्होंने राम के मुख से यह कहलवाया है— “ मानव में श्रेष्ठ जो बिराजा है/उसको ही/हाँ उसका ही जगाना चाहता रहा हूँ बंधु।” (संशय की एक रात, पृष्ठ सं० 88)। इतना ही नहीं उनके युधिष्ठिर राम से भी आगे निकलकर मनुष्य में अंतर्निहित देवत्व के जाग्रत होने तक प्रतीक्षा करने की कामना ही कर डालते हैं— “ मुझे मनुष्य में बिराजे देवता में/सदा विश्वास रहा है/इस देवता के जाग्रत होने की प्रतीक्षा में/मैं अनंतकाल तक प्रतीक्षा कर सकता हूँ भीम।” (महाप्रस्थान पृ०सं० 82)। जाहिर है चिंतन की यह विराटता न केवल मनुष्य को मनुष्य बनाएगी बल्कि कविता को भी श्रेष्ठता से अभिमंडित करेगी और इस तरह औदात्य का जो आलोक पर्व सृजित होगा उसमें मानव महिमा का जयघोष ही सुनाई पड़ेगा—

“ किसी भी मंत्र को सूँघो

किसी भी श्लोक को छुओ

मानुष की गंध और जयकार दिखाई देगा।

मनुष्य होने का अर्थ ही है

एक उत्सव

एक रास का आरात्रिक संपन्न होना।”

नई कविता के आंदोलन काल में मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का प्रश्न सर्वाधिक मुखरित रहा। उसमें ‘नया मनुष्य’ (डॉ० जगदीश गुप्त) बनाम ‘लघु मानव’ (लक्ष्मीकांत वर्मा) की प्रतिष्ठा को लेकर काफी वाद-विवाद चला। तीखी प्रतिक्रियाओं का घटाटोप भी रहा लेकिन उसी काल में सृजनरत नरेश मेहता ने मानव को एक अलग की भूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने उसे जो महिमा और गरिमा प्रदान की वह नई काव्य-धारा के कवियों की परिकल्पना से काफी दूर की कौड़ी थी। एक अलग पथ पर गतिशील मेहता जी में मनुष्य की साधारणता में विराटता को खोजने और पाने की उत्सुकता और संकल्प का भाव अधिक प्रबल था। उनकी काव्य-यात्रा की दिशा लघुता से महानता की ओर ही नहीं मनुष्य से देवत्व की ओर रही है। उनका मानना है कि — “मिट्टी प्रतिभा बनती ही तब है/जब वह धरती पर आकाश का प्रतिनिधित्व करती है/मनुष्य देवता बनता ही तब है/जब वह व्यक्ति का नहीं वैराट्य का प्रतीक होता है।” (अरण्या, पृ०सं० 39) चूंकि कवि मनुष्य में देवत्व की प्रतिष्ठा का आग्रही है। राम में रामत्व की कल्पना की साकारता का पक्षधर है इसलिए व उन संभावनाओं की तलाश करता है जिससे मनुष्य मनुष्यत्व का मूर्तिमान छंद बन सकता है। उसे सर्वाधिक संभावना कविता में दिखाई देती है। कविता से बड़ी कोई आश्वस्त होती भी नहीं इसलिए वह छंद व्यक्तित्व के भद्र के अवतरण का आग्रह करता है—“ओ छंद व्यक्तित्व के भद्र! अवतरित होओ/यह

काव्य—वेदी ही तुम्हारे विश्वात्मन् को वहन करेगी/और सृष्टि को आश्वस्त देगी/क्योंकि काव्य से बड़ी कोई आश्वस्त नहीं होती।” (वही, पृ0सं0 45)। कविता सृष्टि भी भाषा है। वह आग्रहों, पोस्टरों और नारों से मुक्त होती है। स्वत्व और वैष्णवता से युक्त कविता मनुष्य मात्र को चैत्य पुरुष बनाती है, विराट बनाती है। वह मंत्र बनकर देवत्व की स्पृहा जगाती है। इसीलिए वह कवि को साधारण जन की रामायण लगती है— “कविता जब प्रार्थना हो जाती है/कविता जब मनुष्य हो जाती है/तब वह/इस पृथिवी की/साधारण जन की रामायण हो जाती है।” (वही पृ0सं0 60)। वैसे तो ‘इतिहास का अंत’ और कविता की मृत्यु की घोषणा करने वालों को कविता की वापसी संदेहास्पद है लेकिन नरेश मेहता को लगता है कि भागमभाग— आपाधापी, अत्याचार — अनाचार, नृशंसता— अमानवीयता, क्रूरता, हृदयहीनता, कृत्रिम और भयसंकुल वातावरण में कविता ही एक मात्र सहायिका है। संतस्त, कुंठित, विडंबनापूर्ण और असंतुलित जीवन के लिए कविता की शब्दास्त्र है। वह इतिहास और राजनीति से दग्ध मनुष्य में पावनता, शीतलता और तेजस्विता का संचार करने की क्षमता से पूर्ण है— इसीलिए मनुष्य की नजर कविता पर है—“इतिहास और राजनीति में दग्ध हुए/मनुष्य मात्र को/अब केवल कविता की प्रतीक्षा है।” (वही, पृ0सं0 58) कवि कविता के माध्यम से मनुष्य को मंत्र देवता बना देना चाहता है—

“इसी प्रकार हम भी तुम्हें

प्रकाश, सुगंध और भास्वर वाणी के

अंगराग और अंग वस्त्रों से भूषित कर

मंत्र देवता बना देना चाहते हैं।” (वही पृ0सं0 39)

अनासक्त सर्जना पर मुग्ध नरेश मेहता साधारण—से—साधारण मनुष्य में भी ऋषित्व देखते हैं। वे उसे उपेक्षित मानने के पक्ष में तो हैं लेकिन सर्वहारा नहीं क्योंकि असंपृक्त और अनात्म रचनाकार जिस आनंद का भोक्ता होता है वह केवल ऋषि व्यक्तित्व में ही संभव है। ‘ऋषि व्यक्तित्व मनुष्यत्व की चरम संभावना है। वह प्रकृति से तदाकृत हो नगण्य—से—नगण्य सत्ता में अंकुरण, प्रस्फुरण और चेतन भाव देख सकता है। धरती पर धन—धान्य का महाकाव्य रचने वाली ऋषि दृष्टि भला सर्वहारा कैसे हो सकती है? मेहता जी ‘नहीं है वह सर्वहारा’ शीर्षक कविता में इसी ऋषि व्यक्तित्व का आख्यान प्रस्तुत करते हैं—

‘धरती को जो भोजपत्र की गरिमा दे दे

और उस पर सीता—रेखाएं खींच

विभिन्न बीजाक्षरों में

कहीं गेहूं की गायत्री

कहीं यव के अनुष्टुप और

कहीं ईख के स्तोत्र लिख

धन धान्य का महाकाव्य रच दे

और तब भी

कहीं रचयिता होने की कोई प्रतीति ही न हो

ऐसा असंपृक्त—

सर्वहारा नहीं हो सकता

हां उपेक्षित हो सकता है।

पर ऐसी अनात्मता केवल ऋषि में ही संभव है।”

व्यक्ति—अस्मिता की प्रतिष्ठा और जीवन की समल संभवा क्षमता का समाकलन तथा निदर्शन मेहता जी का लक्ष्य है। उनका मानना है कि व्यक्ति अपने भीतर की समस्त संभावनाओं को तलाशकर तथा उसे अपने अंतः आलोक से आलोकित कर महान लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। मानव का संकल्प, उसकी मेधा, उसकी निष्ठा, उसकी अविचल कर्मशक्ति सब कुछ को संभव बना सकती है। कवि का ‘शबरी’ चरित्र इसका अप्रतिम उदाहरण है। अपने आचरण, व्यवहार, ज्ञान और कर्म साधना से उसने जो ऊर्ध्व आरोहण किया है, जिस उदात्त भूमि पर वह प्रतिष्ठित है उसे देखकर राम को यह कहना पड़ता है— ‘शबरी अंत्यज है तो क्या/वह शक्ति रूप है शूद्रा/है तेज रूप वह केवल/शिव शक्ति रूप है शूद्रा/” इतना ही नहीं वह यह भी प्रमाणित करती है कि जीवन में कुछ भी असंभव नहीं है— “शूद्रा से शक्ति और दलित—विमर्श के अतिवादी नारों के बीच शबरी का यह उदात्त चरित्र क्या प्रेरणादायक नहीं है। क्या उसमें स्त्री सशक्तिकरण का संदेश नहीं है? कवि की मानें तो सामाजिक मूढ़ता, परिवेशगत जड़ता तथा अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में व्यक्ति केवल अपने को ही जाग्रह कर सकता है। इसी संघर्ष के माध्यम से ‘स्व’ ‘पर’ हो सकता है, व्यक्ति समाज बन सकता है। व्यक्ति—अस्मिता की प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा उदाहरण है—‘शबरी’ का चरित्र। नगण्य सत्ता दूर्वा का जिजीविषा, तन्मयता, उर्ध्वता भी कवि को आकर्षित करती है। वह उसकी पुरुषार्थ—यात्रा, ऊर्ध्वकुलता था प्रतिस्पर्द्धी भावना पर मुग्ध होता हुआ यह सोचने के लिए विवश होता है कि दूर्वा कभी लोटी, पड़ी नहीं होती, सतत ऊर्ध्वमुखी होती है तो आखिर किसलिए! वह कौन—सी अदम्य पिपासा है जिसके लिए वह वहां तक चढ़ती चली जाती है जहां तक धरती का आरोह है—

“पृथिवी के अंतर को चीरती हुई दूर्वाएं

प्रकाश—पिपीलिकाओं—सी

आदिम अंधेरों और विशाल पेड़ों की

आयुजित जड़ों—सी होड़ लेती

ऊपर की ओर

किस उत्कटता से भागी चली जा रही होती हैं।”

(अरण्या, पृ0 30)

‘उत्सवा’ संग्रह के ‘महाभाव’ कविता में कवि फिर पूछता है— “पशुप्रिया दुर्वाओं के/ये हरिद्र/ अंकुर। क्या मात्र पत्तियां ही हैं?/ क्या इन उपेक्षित घासों को/किसी ऋषि की करुणा ने/कोई अनुष्टुप नहीं सौंपा?/इनमें किसी देवता का वास नहीं लगता?” (पृ0 42) कवि का आग्रह है— “इन अंत्यज माटी—मंत्रों को/एक कवि की दृष्टि से देखो।” (वही)। यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कवि—दृष्टि क्या है? कवि क्या दिखाना चाहता है? इसका उत्तर कवि की काव्य प्रयोजनीयता से संबद्ध है। कवि—दृष्टि में काव्य का प्रयोजन मानवीय उदात्तता है, जड़ता से ऊर्ध्वत्व की ओर की यात्रा है। कवि यह संदेश देना चाहता है कि नगण्य सत्ता होकर भी दूर्वाहृद वाली सारी वानस्पतिकताएं ऊर्ध्वमुखी होती हैं और उनका ऊर्ध्व आरोहण वैष्णवी उत्सवता लिये होता है। कवि के अनुसार “व्यक्ति—समर्पण की निष्णात्, प्रतिश्रुति वैष्णवता है

अर्थात् अनात्म के द्वारा सब कुछ का परित्याग।" (उत्सवा, पृ019) यह अकारण नहीं है कि कवि को नदियों में घों की लिखित गायत्रियों—सी लगती हैं तो दूर्वा कीर्तन पंक्तियों—सी नजर आती है और वृक्ष अपने पुष्पों को अर्पित करता हुआ प्रार्थना गीत लिखता प्रतीत होता है बल्कि यह सृष्टि त्यागमई उदारता है— वैष्णवता है— जिस उनकी अपनी ही चेतना ठीक—ठीक जानती और समझती है—

“अपने में से फूल को जन्म देना  
कितना उदात्त होता है  
यह केवल वृक्ष जानता है  
और फल

वह तो जन्म—जन्मान्तरों के पुण्यों का फल है।”

नरेश मेहता की कवि—दृष्टि प्रकृति के उदात्त रूप पर सर्वाधिक सम्मोहित रही है तो इसीलिए कि वहां सौंदर्य है, उल्लास है, निःस्पृह त्याग और अविभाजित दान है। जो वहां भी है जिस रूप में है वह सत्य को समर्पित है। समर्पण में लीन है— “ पक्षी—वनस्पतियों को अपना कलरव राग सौंपते होते हैं, वनस्पतियां अपनी सुगंध झरनों में प्रवाहित करती होती हैं, झरने अपने जल की आभा और प्रवाह समस्त जैविकता को दे रहे होते हैं और यह जैविकता, अपनी निगूढ़ संपदा का अक्षय कोष घास की उस अनाम पत्ती को सौंप रही होती है जो गायत्री मंत्र में प्रकंपित है।” (उत्सवा, पृ025) इसीलिए कवि भी स्वयं को समर्पित करना चाहता है ताकि वह सार्थकता पा सके— जीवन की धन्यता पा सके—

“मैं अपनी आधु की वानस्पतिक गंध  
फूल को सौंप देना चाहता हूँ  
ताकि वह  
मेरे पुण्यों की मयूरपंखी उत्सवता बन  
सूर्य के धूप मुकुट की जयकार बने।  
इसमें फूल या सूर्य की नहीं  
मेरी सार्थकता है—  
क्योंकि  
फूल मेंरी पृथिवी  
और सूर्य मेरा आकाश है।”

(उत्सव, पृ044)

फूल कवि की चेतना का एक विविध वर्णी प्रतीक है। कभी वह सावित्री सिद्ध ऋषि की भूमिका में आता है तो कभी मंत्र बन जाता है और कभी वह एक शब्द नहीं बल्कि संपूर्ण भाषा होता है। फूल का खिलना उसकी उत्सव वैष्णवता है जो वही कवि की पूर्णता का द्योतक भी है— “जब भी फूल खिलता है/मुझे पूर्ण करता है।” (उत्सव, पृ052)। फूल पूजा का उपकरण नहीं वह मनुष्य की पूर्णता है। उदारमना वनस्पति ने मनुष्य को पूर्णत्व ही प्रदान किया है। उसने दिया भर है—लिया कुछ नहीं। कवि की दृष्टि में प्रकृति न केवल प्रकृति और न मनुष्य केवल मनुष्य बल्कि दोनों में एक प्रकार का तादात्म्य है— दोनों एक—दूसरे में प्रतिच्छवित हैं तभी तो कवि जब भी फूल, नदी या आकाश पर कविता लिखता है तो उसे वह मानवीय प्रकरण ही लगता है। अपनी बात को प्रमाणित करने के उद्देश्य से वह कहता है कि “जब भी मनुष्य की आंखों में आंसू होते हैं/मैंने फूल, नदी, आकाश को रोते

देखा है।” (अरण्या, पृ0 46) जाहिर है सर्व चैतन्य प्रकृति में जो है वही मानव चेतना में भी है किंतु कष्ट इस बात का है बौद्धिक व्यापार में व्यस्त मनुष्य प्रकृति के विराट, मधुर, आलोकमय, तरल, विशाल, कोमल, करुण, छंदमय, स्पंदन का अनुभावन नहीं कर पाता बल्कि उससे प्रतिद्वंद्विता करने लग जाता है। प्राकृतिक समरसता और संतुलन को नष्ट करने पर उतारू हो जाता है। दोहन और दूषण से वह न केवल प्राकृतिक चैतन्य को क्षति पहुंचाता है। बल्कि आत्महंता भी बनता है। कवि इस प्रवृत्ति को सृष्टि विरोधी मानकर अपनी जो प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वह उदात्तता की भूमि पर प्रतिष्ठित पर्यावरण संरक्षक की अद्भुत कविता का रूप धारण कर लेता है—

“जब भी कोई फूल  
पैरों के नीचे आ जाता है।  
लगता है कई मंत्र दब गया है।  
चींटी के आहत होते ही  
संहिता की हत्या—सा लगता है।  
मेरे लिए यह पृथिवि  
दिशाओं पर जाकर समाप्त हो जाने वाली  
मात्र धरती ही नहीं है  
वरन् कवच मात्र की कवच  
नारायणी है।”

इसी भावभूमि की ‘मृत्तिका’ कविता में अनंत रूपा धरती का आख्यान मानव जीवन के लिए प्रेरणा—स्रोत बनकर प्रस्तुत हुआ है। वह केवल मिट्टी नहीं है, मृत्यु की राख का प्रतीक भर नहीं है वह जीवनरूपा है। निर्माण में लीन रचना स्वरूपा है। मातृरूपा, प्रियारूपा, प्रजारूपा, आराध्यारूपा आदि नाना रूपों में वह मानव जीवन की चरितार्थता का मांगलिक पर्व है। उसे मनुष्य का पुरुषार्थ प्रिय है क्योंकि उसी के बल पर वह अपनी सृजनात्मकता को आकार लेती है—संस्कार देती है। मनुष्य जब उसे रौंदता है तब वह मातृरूपा होकर अपना दायित्व निर्वाह करती है— “जब तुम/मुझे पैरों से रौंदते हो/तथा हल के फाल से विदीर्ण करते हो/तब मैं/धन धान्य बनकर मातृरूपा हो जाती हूँ।” (अरण्या पृ0 43)। इसी तरह वह पुरुष के हाथों का स्पर्श पाकर, चाक पर चढ़ाकर, कुंभ—कलश बनकर जल लाती अंतरंग प्रिया हो जाती है। पुरुषार्थ पराजित हो जाने पर भी अगर मनुष्य उसे पुकारता है तो वह उसके लिए चिन्मयी शक्ति बन जाती है। मनुष्य का पुरुषार्थ उसे देवत्व समान लगता है—तभी तो वह कह उठती है—

“विश्वास करो  
यह सबसे बड़ा देवत्व है कि  
तुम पुरुषार्थ करते मनुष्य हो  
और मैं स्वरूप पाती मृत्तिका।”

(वही, पृ0 44)

पुरुषार्थ कर्माश्रित होता है। कर्म से व्यक्ति पुरुषार्थी बनता है। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को कर्म की ही शिक्षा दी है। कर्म मनुष्य को कीर्तिवान, धनवान, तथा वसुंधरा का भोक्ता बनाता है। ‘संशय की एक रात’ में युद्ध के प्रति अनासक्त और संशयग्रस्त राम को दशरथ की छाया कर्म के लिए प्रेरित करती है— ‘पुत्र मेरे/संशय या

शंका नहीं/कर्म ही उत्तर है/यश जिसकी छाया है/उस कर्म को करो।" (पृ0सं0 54) वह छाया राम से यह भी कहती है—"कीर्ति, यश, धरा, नारी/जय, लक्ष्मी/ये नहीं हैं कृपा/या अनुदान/मेरे पुत्र/भिक्षा से नहीं/वर्चस्व से अर्जित हुए ये आज तक।" (पृ0सं0 46) 'पार्थिव भी पृथ्वी भी' कविता में नरेश मेहता कर्म करते समय धरती को पृथ्वी की और पूजा के समय पार्थिव रूप में देखते हैं— "अब कर्म के समय मेरे लिए/यह धरती पृथ्वी है/और पूजा के समय पार्थिव।" इसे 'कर्म ही पूजा' कहा जा सकता है। यह मेहता जी की विराट दृष्टि है जो इस भूमि को गायत्री रूप में देखती है। वे यह भी कहते हैं कि धरती को कहीं से छुओ तो एक ऋचा की प्रतीति होती है। पेड़ मात्र पेड़ नहीं है बल्कि वह एक वानस्पतिक श्लोक है। श्लोक ही क्यों वह एक संपूर्ण उपनिषद् है। प्रार्थना विनय पत्रिका है जो अनाम से अनाम व्यक्ति और घर के भोज-पत्र पर मंत्र केवल ग्रंथों में ही नहीं होते-फूल भी मंत्र होता है। वृक्ष जब प्रार्थना करता है तब एक फूल का जन्म होता है— 'अपने में से फूल को जन्म देना/कितना उदात्त होता है/यह केवल वृक्ष जानता है। 'फल वनस्पति की स्वाहावाणी है—उसी तरह जैसे मनुष्य की प्रार्थना/वानस्पतिक वैष्णव गाथाओं का यह पाठ अहोरात्र चलता रहता है। कवि प्रश्न करता है— "प्रार्थना की इस अनुग्रहता/मंत्र की इस नित्य रास का भी साक्षात् नहीं किया होगा—/घास की अनाम से अनाम पत्ती को छूकर देखा है/क्या वह स्पर्श/चरण स्पर्श—सा नहीं लगता? धूप में छंड लिखती—सी उड़ती चिड़िया/याद करो जिसके प्रसन्न नेत्रों—सी लगती है?/केले के पत्ते पर गिरी हुई बूंद/पंचामृत का स्मरण कराती है या नहीं?" (उत्सवा, पृ0सं0 91-92) कवि का मानना है कि प्रभु के वन-विहार में निरंतर अनुष्ठान चल रहा है जिस पृथ्वी ही अर्थ और संदर्भ देती है। वनस्पति वस्त्रापृथ्वी के भागवत् पृष्ठों पर लिखे जाने वाले फूलों के मंत्र से देवता-पुरुष होते हैं और पुरुष, मंत्र-पुरुष बनते हैं। इसीलिए कवि का आग्रह है—

" किसी दिन

अपने में एक प्रार्थना को जन्म देकर देखो  
लगेगा कि

तुम एक राजसूय-यज्ञ संपन्न कर रहे हो  
और संपूर्ण सृष्टि उपहार लिए उपस्थित है।  
जिस दिन

तुम्हें पृथ्वी पर प्रार्थना करना आ जाएगा  
उस दिन तुम मंत्र

मंत्र ही नहीं मंत्र देवता

मंत्र देवता ही नहीं मंत्र पुरुष हो जाओगे।"

(उत्सवा, पृ0सं0 92)

कविता-कवि-संस्कार की वाहिका होती है। अतः कवि का मानसिक धरातल जितना समुन्नत होगा उसकी रचना भी उतीन ही उदात्त होगी। धरती को गायत्री, फूल को मंत्र, वनस्पतियों को उदारमना तथा पेड़ों को वानस्पतिक श्लोक कहने वाली नरेश मेहता की कवि-दृष्टि कितनी व्यापक और विशाल है— इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। उनकी यह दृष्टि उदात्त मानसिकता की उपज है जो मनुष्य को वैष्णवी और

औपनिषदिक भावभूमि पर विराजमान देखना चाहती है। इसके लिए वह प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन-सामरस्य तथा कृतिज्ञता का भाव जरूरी समझती है। किंतु मनुष्य है कि उससे शत्रुता किए बैठा है। कवि पूछता है—"यह कैसी शाश्वत शत्रुता है तुम्हारी/इस दैवीय संपदा के साथ?/ इस प्रकृति के साथ? और क्यों?"(उत्सवा, पृ0सं0 62) इसका उत्तर वह संवेदनहीन अतिशय भौतिकवादी घटाटोप के भीतर पाता है जहां वैयक्तिकता और अमूल्य ऐकात्मिकता चौराहे की चीज बना दी गई है। विज्ञापन और सार्वजनिकता उसके आयाम हैं। अर्थ-लोलुपता तथा भोगनीयता उसके नियामक हैं। ऐसे में कविता, करुणा और उदात्तता का अर्थहीन हो जाना स्वाभाविक है— फिर तो आंखों में हिंसा चमकेगी ही— "काव्य या करुणा/या किसी भी उदात्तता का /तुम्हारे लिए शायद अब कोई अर्थ नहीं रह गया है/प्रत्येक में पदार्थ देखने वाली/तुम्हारी आंखों में/इसीलिए हिंस्रता चमक रही है।" (वही, पृ060) इसका परिणाम यह हुआ है कि फूल, हवाएं और पक्षियों के झुंड मनुष्य की आंखों से ओझल हो जाना चाहते हैं, देवदारु और भोज-पत्र मनुष्य के हाथ में के स्पर्श में वधिक भाव का अनुभव कहते हैं, विवस्त्र होने के भय से नदियां जलों के पीतांबर लिए भागी जा रही हैं, चमकदार पत्थरों के लिए पृथ्वी क्षत-विक्षत और विदीर्ण हो रही है। यही चिंता आज के पर्यावरणविदों की भी है लेकिन उनके विचारों में संवेदना की वह कोमलता नहीं है जो नरेश मेहता के काव्य-चिंतन में है। कवि अपनी उदात्त चेतना में वन के व्यक्तित्व की आभा पर मुग्ध होता है, उसके गंध को महसूस करता है और इसीलिए लोगों को सावधान करता हुआ कहता है—

"धूप में

यह अनुष्टुप-सा खड़ा

फूल नहीं

सावित्री-सिद्ध, एक ऋषि है

जो सूर्य की प्रशंसा में

सुगंध के मंत्रों का साक्षात् कर रहा है।"

(उत्सवा, पृ0 90)

भारतीय चिंतन का केंद्रीय पक्ष उसकी उदात्तता है जिसे नरेश मेहता ने प्रकृति के वातायन से देखने-पहचानने का प्रयत्न किया है। हमारे यहां संपूर्ण प्रकृति देवी-देवता के रूप में समादृत है तो इसलिए कि उसकी दानशीलता के प्रति हमारे मन में कृतज्ञता का भाव रहा है, नाते-रिश्ते के शब्दों से हमने उसे संबोधित किया है तो इसलिए कि उसके घनिष्ठ स्नेह के प्रति धन्यवाद का इससे बड़ा कोई विकल्प हमारे पास नहीं रहा है। कृष्ण वैराट्य का संसार-वृक्ष अश्वत्थ मानवीय भाषा का उदात्त संबोधन ही तो है। मानवीय स्वत्व ही कल्पतरु बनता है—

"जब हमारे स्वत्व का चंदन-वृक्ष

पीपल पत्रों-सा प्रार्थनामय हो जाता है

तब कोई और नहीं

यह मानवीय स्वत्व ही कल्पतरु होता है।"

(उत्सवा, पृ0 87)

मानवीय स्वत्व में भी समरसता की अपेक्षा रहती है। इसके बिना स्वत्व अहंकार बन जाता है। रचना के लिए स्वत्व अथवा अहं जरूरी होता है। लेकिन अहंकार

नहीं। अहं कमा विलयन रचनात्मकता की अनिवार्य शर्त है इसीलिए कवि का परामर्श है।—

“कभी अपनी वैयक्तिकता को  
इतनी विशाल स्वर लिपि में बजने दो बंधु!  
और देखो इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए  
कैसा अनुष्ठान संपन्न हो रहा है।”

(उत्सवा, पृ0 58)

भारतीय संस्कृति में सामरस्य की महिमा का गान मिलता है। नरेश मेहता सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं। भारतीय संस्कृति के अप्रतिम प्रवक्ता हैं, इसलिए उनके यहां व्यक्ति मनस् और समष्टि मनस् में समरसता की सर्वाधिक जोरदार वकालत की गई है— “चीड़ की परम उर्ध्वता के ठीक पदतल में अनाम घास को जो वृक्ष होगा वह संयोगवश नहीं होगा। एक निश्चित प्रयोजन है— संतुलन का समरसता का। विपुल की अत्यल्प से, विराट की लघुता से, प्रकाश की अंधकार से, कठोर की कोमलता से पग—पग पर चूल बैठाई गई है।।।

मरुस्थलों में बालुओं की अपार राशि को निरंतर समतल बनाए रखने का उत्कट कार्य किसी अन्य को न सौंपकर पारदर्शी हवाओं को क्या संयोग से दिया गया है? सृष्टि में मानवीय सभ्यता की औपचारिकता या आडंबर या मिथ्या भाषा का व्यवहार कहीं नहीं मिलेगा और न कोई अंसतोष। प्रकृति में, सृष्टि में सामरस्य है, प्रतिद्वंद्विता नहीं।” (उत्सवा, अथातो काव्य जिज्ञासा पृ0 15)

जड़—चेतन, व्यक्ति—समाज, राजा—प्रजा के बीच समरसता का आयोजन जब कम होने लगता है तभी विघटन और अव्यवस्था का जन्म होता है। ‘महाप्रस्थान’ में नरेश मेहता ने व्यक्ति की सत्ता पर समाज और समाज के नाम पर राज्य के वर्चस्व को समरसहीनता का कारण मानते हुए इस मानवीय स्वत्व और गरिमा के लिए खतरे की घंटी मना है—

“राज्य के अकूल शक्ति संपन्न होने का अर्थ ही है

व्यक्ति का स्वत्वहीन होना!

राज्य की गरिमा को

व्यक्ति की गरिमा का पर्याय होने दो

किसी भी व्यवस्था का

व्यक्ति से बड़े हो जाने का अर्थ होगा

आमनवीय तंत्र।”

(महाप्रस्थान, पृ0सं0 44)

समरस चिंतन के अभाव में सत्ता के गोमुख पर विराजमान व्यक्ति शक्ति के संपूर्ण जल को स्वयं के अभिषेक के लिए संचित और सुरक्षित रचना चाहता है। ऐसी स्थिति में सामान्य मनुष्य का क्या होगा? मानवीयता के लिए समर्पित राम की सबसे बड़ी चिंता यही है— “सत्ता के गोमुख पर बैठकर/उसके सारे शक्ति जलों को अपने ही अभिषेक के लिए/सुरक्षित रखना/ यह कौन—सा दर्शन है लक्ष्मण।” (संशय की एक रात)। इससे असामानता का विस्तार होगा। एक अमीर होगा—दूसरा गरीब। एक राजा होगा—दूसरा प्रजा। एक शोषक होगा—दूसरा शोषित। एक सुखी होगा—दूसरा दुःखी। नरेश मेहता मानवीय दुःखों के मूल में राज्य और राज्यव्यवस्था को ही जिम्मेदार ठहराते हैं— “सारे मानवीय दुःखों का

आधार/यह राज्य है/राज्य व्यवस्था है/और राज्य व्यवस्था को दर्शन है” (महाप्रस्थान) युधिष्ठिर अर्जुन से यह भी कहते हैं कि जब मानवीय स्वत्व अपहृत होता है तब साम्राज्य दीप्तिमान होता है— “विचारहारा साधारण जनों के बारे में सोचो/जो सदा अपमानित होते रहे हैं/जिनके स्वत्व का अपहरण ही/हमारे ये दीप्ति साम्राज्य हैं।” युधिष्ठिर यह भी मानते हैं कि दुर्योधन ही अकेला अहंकारी और अविनयी नहीं था बल्कि व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही कोई भी अपने मनुष्यत्व से रहित हो जाता है— “अकेला दुर्योधन ही/दुर्विनीत नहीं था अर्जुन/व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही/किसी भी व्यक्ति का/मनुष्य नष्ट हो जाता है।” (महाप्रस्थान, पृ0 123)।

मानवीय मूल्यों को पददलित और धूलिधूसरित करने के लिए राज्य—व्यवस्था की निरंकुशता की काफी है किंतु उसमें कठोरता तथा क्रूरता का और समावेश हो जाए तब मानवीयता की क्या दशा होगी—इसकी चिंता भी युधिष्ठिर को व्यथित करती है— “आज नहीं तो कल/राजा से अधिक कठोर हो जाएंगे/ये राज्य/और सुदूर भविष्य में/राज्य से भी अधिक अमानवीय हो जाएंगी/ये राज्य व्यवस्थाएं।” (महाप्रस्थान, पृ0 108)। प्रज्ञावान युधिष्ठिर का मानव के भाल पर कलंक कालिमा की भांति स्थापित हो रही अमानवीयता के प्रति चिंतित और विचलित होना स्वाभाविक है। मानवता का रथ जिस अंधे मार्ग पर बढ़ रहा है— उससे भयावह संकट की स्थिति पैदा हो गई है। यह संकट युद्ध का है, आतंक और उन्माद का है। मानवीय संस्कृति के लिए इससे बड़ा खतरा और कुछ भी नहीं है। मूल्यान्वेषी युधिष्ठिर यह मानते हैं कि जब सारी मर्यादाएं नष्ट हो जाती हैं, समाधान के रास्ते बंद हो जाते हैं, मूल्यों का पतन हो जाता है तब युद्ध होता है— “मूल्य और मानवीय उदात्तताएं/जब सार्वजनिक जीवन में। हो जाती हैं शेष/तभी होता है युद्ध।” भीषण नर—संहार, अपार जन—धन की क्षति, चीख और चीत्कार चिंतित और विचलित करता है, राम को और कवि नरेश मेहता को भी व्यथित और दुःखी करता है। इसीलिए कवि ने राम के मुंह से यह कहलवाया है कि—“मैं सत्य चाहता हूँ/युद्ध से नहीं/खड्ग से भी नहीं/मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।

नरेश मेहता की रचनाधर्मिता का केंद्रीय भाव मनुष्य का उत्कर्ष है। उन्हें आशा है कि मानवीय औदत्य का आलोक पर्व अवश्य जगमगाएगा तभी तो उन्होंने कहा है—

“ एक दिन मनुष्य सूर्य बनेगा  
क्योंकि वह आकाश में पृथिवी का  
और पृथिवी पर आकाश का प्रतिनिधि होगा।”

### निष्कर्ष

नरेश मेहता बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं। उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी में साहित्य की हर विधा का संस्पर्श किया है। नरेश मेहता जी के काव्य में आस्था का स्वर प्रमुख था। कवि की सृष्टि भविष्य के प्रति आशान्वित है। अतः मेहता जी उन कवियों में से हैं जो परम्परा के जीवन्त तत्वों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति रखते हैं। कवि का काव्य फलक नितान्त विस्तृत है। प्रकृति, प्रेम, संस्कृति आदि मेहता जी के प्रिय धरातल हैं जहाँ से भावों की

सम्पदा ग्रहण की गई है। कवि धर्म की सबसे बड़ी कसौटी भाषा है काव्य में अभिव्यंजना, सामान्य अभिव्यक्ति के क्षेत्र से हटकर विशिष्ट शैली का रूप धारण कर लेती है परन्तु कवि भाषा के प्रति उतना ही सजग और निष्ठावान होता है जितना की भाव के प्रति।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. नरेश मेहता – कविता की उर्ध्वयात्रा– पृ0 17
2. नरेश मेहता – कविता की उर्ध्वयात्रा– पृ0 5–6
3. नरेश मेहता – कविता की उर्ध्वयात्रा– पृ0 7–8
4. नरेश मेहता – कविता की उर्ध्वयात्रा– पृ0 9–10
5. धूपकेतु एक श्रुति – पृ0 44.
6. व्यक्तित्व बातचीत के आधार पर।